

जैन गीत

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु सुखदाता
परमेष्ठी पंच सुखदाता ॥ धृ ॥

इन्द्र नरेन्द्र यक्ष सुर किन्नर, पण्डित बुधजन सारे,
भवतम भंजन शीष नमावत रखक तुम्हीं हमारे
जब शुभ मन से ध्यावे, तब शुभ आशीष पावे
हे सद्बुद्धि प्रदाता ॥ १ ॥

भव दुख बाधा हरो हमारी तुम्हें नमावत माथा
जय हे, जय हे, जय हे, जय, जय जय जय हे
परमेष्ठी पंच सुखदाता ।

चारो गति में भ्रमत फिरे है, कष्ट अनेक उठाये
न नयन जब खुले हमारे, तब तब दर्शन पाये
सुख की ये आस लगाये, हम सब तुम ढिम आये
जहां मिले सुख साता ।

नाथ तुम्हारे दर्शन से, तो मुक्ति पथ मिल जाता
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय हे
परमेष्ठी पंच सुखदाता ।

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुखदाता ।
परमेष्ठी पंचसुखदाता ।

नंदीश्वर आरती

आरती घेरुनी ओवाळा हो बावन्न जिनचरणी ।
हर्ष होरुनी हृदयी कमणी निशदिनी करा स्मरोनी ॥ १ ॥

आषाढ कार्तिक फाल्गुन मासी अष्टान्हिक तिन्ही ।
सुरवर अवघे परिवार घेऊनी येतात धावोनी ॥ २ ॥

करितात पूजा अर्चन त्यांना दृढमन लावोनी ।
साडे बारा कोटि वाद्ये वाजत झणझणी ॥ ३ ॥

रत्नजडितशा सुवर्ण ताटी दीपक-लावोनी ।
मन, वचन, काया, शुध्द करोनी उजळा निजध्यानी ॥ ४ ॥

आनंद करोनी जिनगुण गाऊ बीजाक्षरी वदनी ।
मन वांछित होईल तुम्हासी चतुर्गती चुकवोनी ॥ ५ ॥

सुंदर सोलापूर मंदिरात महावीर मूर्ती ।
लुब्ध होऊनी मस्तक ठेवा जिन चरणाप्रति ॥ ६ ॥

छिन्न भिन्न होऊनी कर्म आपोआप जळती ।
छंद लावूनी मंद बुद्धिने रचिली आरती ॥ ७ ॥

आरती घेऊनी ओवाळा हो बावन्न जिनचरणी ।
हर्ष होऊनी हृदयी कमणी निशदिनी करा स्परोनी ॥ ८ ॥

॥ सुप्रभातस्तोत्रम् ॥

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जनमाभिषेकोत्सवे
यद्दीक्षग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे ॥
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः ।
संगीतसतुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभतोत्सवेः ॥ १ ॥

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभि । रालीढपादयुग दुर्धरकर्मदूर ।
श्रीनाभिनंदन जिनाजित शंभवाख्य ।
त्वद्ध्यानतोऽसतु सततं मम सुप्रभातम् ॥ २ ॥

छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमान । देवाभिनन्दनमुने समुते

जिनेद्र । पद्मप्रभारुणमणिघृतिभासुरांग । त्व. ॥ ३ ॥

अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्र । प्रालेयतारगिरीमौक्ति-
कवर्णगौर । चन्द्रप्रभसफटिकपांडुरपुष्पदंत । त्व. ॥ ४ ॥

सनतपतकांस चनरुचेजिन शीतलाख्य । श्रेयान्विनष्टदुरिताष्ट-
कलंकपंक । बंधूक बंधुररुचे जिनवासुपूज्य । त्व. ॥ ५ ॥

उद्दण्डर्पकरिपो विमलामलांग । स्थेमन्ननतजिदनन्तसु-
खाम्बुराशे । दुष्टकर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ । त्व. ॥ ६ ॥

देवामरीकुसुमसंनिभ शांतिनाथ । कुन्थो दयागुणविभूषण-
भूषितांग । देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ । त्व. ॥ ७ ॥

यन्मोहमल्लमदभंजनमल्लिनाथ । खेमंकरावितथशासन
सुव्रताख्य । सत्सम्पदा प्रशमितो नमिनामधेय । त्व. ॥ ८ ॥

तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ । घोरोपर्गविजयिन्
जिनपार्श्वनाथ । स्याद्वादसूक्तिमिदर्पावर्द्धमान । त्व. ॥ ९ ॥

प्रालेयनीलहरितारुणपीतभासं । यनमूर्तिमव्ययसुखावसंधं
मुनीन्द्राः । ध्यायंति सपततिशतं जिनवल्लभनां । त्व. ॥ १० ॥

सुप्रभातं सुनखत्रं मांगल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ॥ ११ ॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयःप्रत्याभिनन्दितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभतं दिने दिने ॥ १२ ॥

सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्त्वसुखावहम् ॥ १३ ॥

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मभलितचक्षुषाम् ।
अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ॥ १४ ॥

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य वीरः कमललोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवन्हिना ॥ १५ ॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां जिनानामेव शासनम् ॥ १६ ॥

श्री पार्श्वनाथ आरती

जय पार्श्वनाथ जिनराया । हा दीनशरण तव पाया ॥ धृ ॥

ज्ञान-अनुपम ज्योती लावुनी आरती करण्यते या ।
बुद्धि सदोदित हृदयी वसु दे, भगवती नेऊन विलया ॥ १ ॥

इंद्रादिक सुरवृंद समर्थ न जिनवर-गुणगान गाया ।
काय असे मग पाड नराचा, तद्गुण लेश वदाया ॥ २ ॥

भक्तजनांचा कैवरी तू अससि म्हणुनि या सदया ।
उत्कंडित हा दास रतन तव चरणामृत रस पया ॥ ३ ॥

आध्यात्मिक-गीत

क्षु. श्री. १०५ सहजानंद वर्णीकृत

भोगे तो भेग क्या है, भोगों ने भोगा हमको ।
इन भोगही के कारण, कर्मों ने घेरा हमको ॥ धृ ॥

हम सोचते बडा सुख, धन-धान-मान जनका ।
सुखका बहाना करके छोडेगा पुण्य हमको ॥ १ ॥

हम सोचते बडे हैं, इनसे उमर बडी है ।
कर-कर बडाबडाये, खा लेगा लाल हमको ॥ २ ॥

जिस तन को सजाते हैं, इतराते हैं रूप लखकर ।
सेवार्ये कराकर ये, छोडेगा देह हमको ॥ ३ ॥

पितु मात भ्रात नारी, सुख संपदा भी सारी ।
मोही बना-बना सब, छोडगा कभी हमको ॥ ४ ॥

तन, जन, चमन, खजाने साथी न हो मनोहर ।
एक धर्म हा हितू जो, होगा सहाय हमको ॥ ५ ॥

ओंकारं बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायनित योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ।

दर्शनपाठ

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरण आयो सरनजी
यो बिरद आप निहार स्वामी, मेट जा मन मरनजी
तुम ना पिछान्या आन मान्या, दे विविध प्रकारजी
या बुद्धिसेति निज न जाण्या, भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥

भवबिकट वनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरी हय्यो
तव इष्ट भूलयो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गतिधरतो फिय्यो
धन घडी यो धन दिवस यो ही, धनजनम मेरी भयो
अब भग मेरो उदय आयो, दरस प्रभुको लखलाये ॥ २ ॥

छबि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापें धरें
वसु प्रातिहार्य अननत गुण जुत, कोटि रवि छबिको हरो

मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, दअय रवि आतम भयो
मो उर हरख ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणी लह्यो ॥ ३ ॥

मैं हाथ जोउ नवाय मस्तक वीनऊं, तुंव चरन जी
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक पति जिन सुनहुं तारन तरन जी
जाचूं नहं सुरवास पुनि, नरसाज परिजन साथजी
बुध जाचहूं तु भक्ति भव भव, दीजिये शिव नाथजी ॥ ४ ॥

जिनवाणी स्तुति

साँची तो गंगा यह वीतराग वाणी ।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी ॥ धृ ॥
जामे अति ही विमल अगाध ज्ञान-पानी ।
जहाँ नही संशयादि पंक निशानी ॥ १ ॥
सप्तभंग जहाँ तरंग उछलत सुखदानी ।
सन्त चित्त मरालवंन्द रमें नित्य ज्ञानी ॥ २ ॥
जाकेँ अवगाहन तैं शुध्द होय प्रानी ।
भागचंद निहचै घटमाँहि या प्रभानी ॥ ३ ॥

सहजानंद-गीत

क्षु. श्री १०५ सहजानंद वर्णीकृत

सहजानंदी शुध्द स्वभवी, अविनाशी मैं आत्मस्वरूप ।
स्व-पर प्रकाशी ज्ञान हमारा, चिदानंदघन प्राण हमारा ॥ धृ ॥
स्वयंज्याति सुख धाम हमारा, रेहे अटल यह ध्यान हमारा ॥
देव हमारे श्री अरिहंत, गुरु हमारे निर्ग्रथ संत ।
अरिहंत सदा जयवंत रहो, चैतन्य सदा जयवंत रहो ।
गुरुदेव सदा जयवंत रहो, जिनवाणी सदा जयवंत रहो ।
देह मरे भले मैं नही मरता, अजरामर मैं आत्मस्वरूप ।

॥ ॐ नम ॥

भजन नं. १

कर लो आतमान परमात्म बन जइयो ।
कर लो भेदविज्ञान ज्ञानी बन जइयो ॥ धृ ॥
जग झूठा हैं, झूठे रिश्ते झूठे रिश्ते, नाते झूठे ।
साचां है आत्मज्ञान, परमात्म बन जइयो ॥ १ ॥
देह भिन्न है, आत्म भिन्न है,
ज्ञान भिन्न है, राग भिन्न है,
ज्ञानयकको पहिचान, परमात्म बन जइयो ॥ २ ॥
कुन्दकुन्द आचार्य देवनें, आत्म तत्त्व बताया हैं ।
शुद्धात्मको जान परमात्म बन जइयो ॥ ३ ॥
कुन्दकुन्दकेही प्रतापसे ध्रुवकी धूम मची है रे ।
वीर सागरजीकेही प्रतापसे ध्रुवकी धूम मची ह रे ।
धर लो ध्रुव का ज्ञान, परमात्म बन जइयो ॥ ४ ॥

भजन नं. २

आदि जिनेश्वर दैवत माणे । हृदयी माइया नित्य विराजे ॥ धृ ॥
पुत्रत्र महात्मा मरुदेवीचा । नाभिराज हा पिता जयांचा ॥
तीर्थकर हे जगति मनोहर । जीवोद्धारक त्रिभुवनी गाजे ॥ १ ॥
दिगंबरी ही ज्यांची वृत्ती । मोक्षमार्ग हे तेथे असती ॥
रत्नत्रयी ही पवित्र मूर्ति । त्रिलोकी ज्यांच कीर्ति गाजे ॥ २ ॥
पाहुनि मंगल सुंदर मूर्ती । सारे सात्विक भाव उमलती ॥
सहजची दोन्ही कर हे जुळती । त्रिवार वंदन तयांना माझे ॥ ३ ॥

भजन नं. ३

रंग मा रंग मा रंग मा रे प्रभु थारा रंग मा रंगी गयो रे ड१ धृ ॥

आया मंगल दिन मंगल अवसर
भक्ति माँ थारी हूँ नाच
रह्यो रे ॥ १ ॥

गावो रे गाना आतमरामका
आतम देव बुलाय रह्यो रे ॥ २ ॥

आत्म देव की अंतर में देखा
सुख सरोवर उछल रह्यो रे ॥ ३ ॥

भाव भरी हम भावना भायो
आप समान बनाय लिजो रे ॥ ४ ॥

समयसार में कुन्दकुन्द देवने
भगवान कहीने बुलाय रह्यो रे ॥ ५ ॥

आज हमारा उपयोग पलट्यो
चैतन्य, चैतन्य, भस रह्यो रे ॥ ६ ॥

भजन
(तर्ज - एक प्यार का नगमा है ।)

संसार है इक नदिया, सुख-दुःख दो किनारे है ।
आज जाओ प्रभु अब तो, हम तेरे सहारे है ॥ ७ ॥

कोई भी किसी के लिए, आपना न पराया है ।
रिश्तों के जालों में, हर आदमी समाया है ।
कुदरत के भी देखो जो, ये खेल निराले है ॥ ९ ॥
आ जाओ प्रभु

है कोन जो दुनिया में, न पाप किया जिसने ।
बिन उलणे कांटो से, है चुने किसने है ।
बेदाग नहीं कोई, यहाँ पापी सारे है ॥ २ ॥
आ जाओ प्रभु

धरती से अंबर की, आँखे से बरसती है ।
एक रोज यही बुँदे, जो बादल बनती है ।

इस बनने बिगडने के, दुस्तर येसारे है ॥ ३ ॥
आ जाओ प्रभु

चलते हुए जीवन की, रूतार में एक लय है ।
एक ताल में गर्दिश में, ये चाँद सितारे है ।
ना जाने प्रभु अब तो, अम तेरे सहारे है ॥ ४ ॥
आ जाओ प्रभु

भजन
(आर्यिका - चंदनामती)

नाम तिहरा तारनहारा, कब तेरा दर्शन होगा ।
तरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा ॥ धृ ॥

जाने कितनी माताओं ने, कितने सुत जन्मे है ।
पर इस वसुधा पर तेरे सम, कोई नहीं बने है ।
पूर्व दिशा में सूर्यदेव सम, सदा तेरा दश्रन होगा ॥ १ ॥
तेरी प्रतिमा

पृथ्वी के सुन्द परमाणु, सब तुझमें ही समा गए ।
केवल उतने ही अणु मिलकर, तेरी रचना बना गए ।
एस लिए तुझ सम सुन्दर नहीं, कोई नर सुन्दर होगा ॥ २ ॥
तेरी प्रतिमा

मन में तव सुमिरन करने से, पाप सभी नश जाते है ।
यदी प्रतयक्ष करें तव दर्शन, मनवांछित फल पाते है ।
आज चंदनामती प्रभू का, अनुपम गुण किर्तन होगा ॥ ३ ॥
तरी प्रतिमा

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ

मैं हूँ आपने में स्वयं पूर्ण
पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं

मैं अरस अरूपी अस्पर्शी,
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं

मैं रंग-राग से भिन्न, भेदसे
भी मैं भिन्न निराला हूँ

मैं हूँ अखण्ड चैतन्यपिण्ड,
निज रस में रमनेवाला हूँ

मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता,
मुझ में पर का कुछ काम नहीं

मैं मुझ में रहनेवाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं

मैं शुद्ध, बुद्ध अविरुद्ध, एक,
पर परिणति से अप्रभावी हूँ

आत्मानुभूति से प्रापत तत्त्व,
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

आलोचना पाठ
(चाल - बा नीज गडे)

करि आलोचना शुद्धिसतव ती आज ।
वंदुनिया श्रीजिनराज ॥ धृ ॥

प्रभु आजवरी दुष्कृत घडले भरी ।
ऐकावि कथा ती सारी ।

त्यापासुनि मी व्हावयास निवृत्त ।
तुम्हांस शरण भगवंत ॥
एकेंद्रिय विकलत्रय वा, मनरहितसहितही
जीवा, नच ठेवी करुणाभवा ।
निर्दयतेने वधिले प्राणि अनंत ।
विचारे संसारात करि. ॥ १ ॥

सरंभ, समारंभ, आरंभाने ।
मन, वचन तसे कायेने ॥
कृत, कारित वा अनुमोदन देऊन ।
क्रोधदि कषायां धरुन ।
एकशे- आठ भेदांनी । अध केले पर-छेहांनी ।
किती वर्णू पापकहाणी ।
नच अंत तया लागे, मी अल्पज्ञ ।
जाणता तुम्ही सर्वज्ञ करि. ॥ २ ॥

एकांत तसे संशय विपरीत ।
अज्ञान विजय कनयांत ॥
मिथ्यात्व वशें भ्रमता चार गतीत ।
पाखंडी-गुरु-सेवेत ।
हिंसानृत चोरी कुशील । आरंभ, परिग्रह अतुल ।
पंचेंद्रिय विषयहि सकल ।
या माजि बहु कर्म स्वैर मी केले ।
अन्याया नच जाणीले करि ... ॥ ३ ॥

मधु मांस तसे मद्या सेवन केले ।
औदुंबर उदरी भरिले ॥
नित भक्षिले अभक्ष्य अविवेकाने ।
सोडिली न सातहि व्यसने ॥
पंचेविस कषाय धरिले ।
निद्रावश शयनहि केले ॥
स्पृणी पण दूषण घडले ।
जागुनि जाई पुनरपि विषय वनांत ।
नानाविध विषफल खात । करि. ॥ ४ ॥

आहारि तसे विहारि वा नीहारी ।
ना होई यत्नाचारी ॥
नच निरखीतां वस्तू उचली-ठेवी ।
ना शोधुनि अन्ना खाई ॥
हे प्रमाद मज गांजीती,
अति विकल्प चित्ती उठती, मिथ्यात्वे
ग्रस्त मती ती । घेऊनि नियमा दूषित विपुला ।
जाणता तुम्ही ते सकल । करि. ॥ ५ ॥

अपराधी मी त्रस जीवा बहु वधिले ।
स्थावरा न सांभाळिले ॥
पृथ्वी खणिली सांडि उगिच जलधारा ।
पंख्याने घेई वारा । बहु हरितकाय छेदोनी ॥
आनंद खाऊनी मानी ।
ना पाहुनि पेटवी अग्नी ॥
यामध्ये जे आले जीव अनंत ।
पाठविले परलोकांत । करि. ॥ ६ ॥

दळि-कांडि निशी धान्य विना निवडीता ।
जीवा वधि घर झडीतां ॥
नच पाहोनी इंधन जाळि चुलीत ।
मुंग्यादि जिवां मारीत ॥
जीवाणु न सोडि जलांत । फेकिले वारि मोरीत ।
वाळवितां धन्य उन्हांत ॥
किति तरी पहा हो जंतूंचा घात ।
धुतलयाने वस्त्रे नदित । करि. ॥ ७ ॥

धन कमावितां करि आरंभहि बहुत ।
हिंसादि पाप अगणित ।
तृष्णवश मी कर्म करि संचित ।
करुणा नच लेश मनांत ॥
तो उदया आतां येती ।
अति दुःख फलांना देती ॥

वदण्यास नसे मज शक्ती ।
जाणतां तुम्ही केवळि, मी ये शरण ॥
तारुनी करा ब्रीद पूर्ण । करि. ॥ ८ ॥

करि ग्रामपती दुःखित-दुखं नाश ।
तुम्ही तर त्रिभुवन ईश ॥
द्रौपदि, सीता, अंजनादि ते तरले ।
सद्भक्त कितल उध्दरले ॥
अवगुणास मम टाळुनिया ।
स्वंब्रीद्रा सांभाळुनिया करुनी राया ॥
मज तारावे दुःखतुनि या नाथ ।
तुम्ही कृपावंत भगवंत । करि. ॥ ९ ॥

आशा ही नसे इंद्रादिक पदवीची ।
वा विषयी रत होण्याची ॥
रागादिक ते दोष लयास जावो ।
परमात्म-पदाला पावो ॥
सुख वाढो सर्व जिवांच ।
आनंद मंगलहि सांचे ॥
स्वानुभव सद्रत्नांचे ।
पारखि विनवी जोहरी लागे छंद ॥
प्रभु चरण शरण अनंद । करि. ॥ १० ॥

दर्शन पाठ

ॐ जय जय । निस्सहि निससहि निस्सहि ॥

निः संगोऽह जिनानां मदनमनुपमं त्रिः पीरत्यैत्य भक्त्या ।
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोनतः शनैर्हस्तयुग्मम् ।
भाले संस्पीप्य बुध्द्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रमन्द्यम् ।
निंदादूरं सदापतं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥ १ ॥

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशमन् ।

दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥ २ ॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणं साधूनां वंदनेन च ।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥ ३ ॥

वीतरागमुखं दृष्ट्वा । पन्नरागसमप्रभम् ।
जनमजन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति ॥ ४ ॥

दर्शनं जिनसूयस्य । संसारध्वांतनाशनम् ।
बोधनं चित्तपदस्य । समस्तार्थप्रकाशनम् ॥ ५ ॥

दर्शनं जिनचंद्रस्य । सध्दमामृतवर्षणम् ।
जनमदाहविनाशाय वर्धनं सुखवारिधेः ॥ ६ ॥

जीवादितत्त्वप्रतिदर्शकाय सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणाश्रयाय ।
प्रशांतरूपाय दिगंबराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥ ७ ॥

चिदानंदैकरूपाय । जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय । नित्यं सिध्दात्मने नमः ॥ ८ ॥

अन्यथा शरणं नास्ति । त्वमेव शरणं मम ।
तसमात्कारुण्यभवेन । रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ९ ॥

नहि त्राता नहि त्राता । नहि त्राता जगात्त्रये ।
वीतरागात्परो देवा । न भूतो न भविष्यति ॥ १० ॥

जिने भक्तार्जिने भक्तार्जिने भक्तार्जिने दिने ।
सदाऽमेस्तु सदाऽमेस्तु सदाऽमेस्तु भवे भवे ॥ ११ ॥

जिने भक्तार्जिने भक्तार्जिने भक्ति सदास्तु मे ।
सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ १२ ॥

रुते भक्तिः रुते भक्तिः भुते भक्तिः सदास्तु मे ।
सज्ज्ञानसेव संसार-वारणं मोक्षकारणं ॥ १३ ॥

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्ति सदास्तु मे ।
चारित्रमेव संसार-वारणं मोक्षकारणं ॥ १४ ॥

जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेत् चक्रवर्त्यपि ।
सचिंतोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मनिवासितः ॥ १५ ॥

जनमजनमकृत पापं । जनमकोट्यामुपार्जितम् ।
जनममृत्युजरातंक हन्यते जिनवंदनात् ॥ १६ ॥

दिव्य मंत्र

अससी सिंहाचा छावा, जागृत कर तू निज भावा ।
धर शूरत्वाचा बाणा, दीन वचन कधीही वद ना ॥
उदात्त पावन, बनवी जिन मन । सोउ भ्याडपण,
दास नसे तू कोणाचा, तू सम्राट तव राज्याचा ॥ १ ॥

काय तुझ्या साम्राज्याचे, तेज वंदू मी मम वाचे ?
तिळभर त्याची सर ये ना, कोट्यावधि रविचंद्राना ।
अक्षय टिकते, सत्सुख देते, नत ते करिते,
षटखंडांच्या अधिपनि, स्वर्गीच्या देवद्रांना ॥ २ ॥

अनंत शक्ती त्वदंतरी, गुप्त कुठेतरी वास करी
का नच दिसते ती तुजला ? प्रश्न विचारी हृदयाला ।
निस्पृह बनता, निग्रह करता, ध्यानी रमता,
कोडे सगळ उलगडते, दुर्गम बहिरात्मा गमते ॥ ३ ॥

पउले पडदे कर्माचे, लपविती बल जे आत्म्याचे
काय बरे साधन दिसते, दूर करायाते त्याचे ?
कर हे चिंतन तू रात्रदिन, ध्यास तयाविण,
लागू दे अन्य न तुजला, बघसि न जोवरि दिव्य बला ॥ ४ ॥

विश्वप्रेमाची स्फूर्तीर, संचरु दे तुझिया चित्ती

सत्याच्या मधु तानात, गा शीलाचे संगीत ।
सत्य सुखाचे, आनंदाचे, स्वर गानाचे,
ऐकुनि हरतिल जीवांचे आर्तस्वर नाना भविचे ॥ ५ ॥

द्वात्रिंशतिका
(सामायिक पाठ)

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभवं विपरीतवृत्तौ,
सदा मामात्मा विदधतु देव ॥ १ ॥

शरीरतः कर्तुमनन्तशक्ति,
विभिन्नमात्मानमपासतदोषम् ।
जिनैर्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं,
तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥ २ ॥

दुःखे सुखे वैरिणी बंधुवर्गे,
योगे वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुध्देः,
समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥ ३ ॥

मुनीश लीनाविव, कीलिताविव,
स्थिरौ निषाताविव बिंबिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥ ४ ॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः
प्रमादतः संचरता, इतस्ततः ।
क्षताः विभिन्ना मलिता निपीडिताः,
तदसतु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥ ५ ॥

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना,

मया कषायाक्षवज्ञेन दुर्धिया ।
चारित्रशुद्धेर्यदकारिलोपनं तदस्तु
मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥ ६ ॥

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं,
मनोवचःकायकषायनिर्मितम् ।
निहनिम पापं भवदाःखकारणं,
भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥ ७ ॥

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं,
जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः ।
व्याधामनाचारमपि प्रमादतः
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥ ८ ॥

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं
व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलुंघनम् ।
प्रभेऽतिचारं विषयेषु वर्तनं,
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥ ९ ॥

यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं,
मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तनमे क्षमित्वा विदधातु देवी
सरस्वती केवलबोध लब्धिम् ॥ १० ॥

बोधिः समाधिः पिरणामशुद्धिः
स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धीः
चिंतामणिं चिनिततवसतुदाने
त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥ ११ ॥

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः ।
यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणः शास्त्रैः
स देवदेवा हृदये ममास्ताम् ॥ १२ ॥

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभवः,
समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसङ्गः,
स देवदेवो हृदये ममासताम् ॥ १३ ॥

निषूदते यो भवदुःखजालं,
निरीक्षते यो जगदन्तरालं ।
योऽनतर्गतो योगिनिरीक्षणीयः
स देवदेवो हृदये ममासताम् ॥ १४ ॥

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो,
यो जन्ममृत्युव्यसनादतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः,
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १५ ॥

क्रीडाकृताशेषशरीरवर्गाः
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियी ज्ञानमयोऽनपायः
स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १६ ॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः
सिद्धो विबुधो धृतकर्मबंधः
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं ।
स देवदेवो हृदये ममासताम् ॥ १७ ॥

न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषर्यो
ध्यान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरंजनं नित्यमनेकमेक,
त देवमापतं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

विभासते यत्र मरीचिमाली,
न विद्यमाने भुवनावभासी ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं ।

तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं ।
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं ।
त देवमापतं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा,
विषादनिद्राभयशोकचिन्ता ।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपंचस्तं ।
देवमापतं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी ।
विधानतो नो फलको विनिर्मितः
यतो निरस्ताक्ष कषायविद्विषः ।
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मत ॥ २२ ॥

न संस्तारो भद्र समाधिसाधनं ।
न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतसततोऽध्यात्मरतो भवानिशं
विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥ २३ ॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः ।
भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं
स्वप्तिं सदा त्वं भव भद्र मुक्त्ये ॥ २४ ॥

आत्मानमात्मन्यवलोकयमानः
त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्र चित्तः खलु यत्र तत्र
स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥ २५ ॥

कः सदा शाश्वतिको ममात्मा
विनिर्मलः साधिगमस्वभावः

बहिर्भवाः सनत्यपरे समस्ताः
न शाश्वताः कम्भवा सवकीया ॥ २६ ॥

यस्यास्ति नैक्यं वपुषामि साध्वं,
तस्यास्ति किंपुत्रकलत्रमित्रैः
पृथक्कृते चर्मणी रोमकूपाः
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥ २७ ॥

संयोगतो दुःखमनेकभेदं,
यतोऽश्नुते जनमवने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो
यियासुना नितिर्वृमित्मनीनाम् ॥ २८ ॥

सर्वा निराकृत्य विकल्पजालं
संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो
निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥ २९ ॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ ३० ॥

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो
न कापि कस्यापि ददाति किञ्चन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः
परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥ ३१ ॥

येः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः
सर्वविविक्तोभृशमनवन्द्यः
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते
मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥ ३२ ॥

इति द्वात्रिंशति वृत्तैः

परमात्मानमीक्षते ।
योऽनन्यगतचेतस्को
यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ ३३ ॥

वीरध्वज-गीत

जय महावर म्हणणार ।
गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ १ ॥

स्फूति-भक्तिचा संगम गोड । विनयाची त्या देऊन जोड ।
अभिवादन करणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ १ ॥

हिंसेचे साम्राज्य पसरत । थय थय नाचे क्रूर अदयता ।
ऋार तया करणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ २ ॥

आत्म्याचा गुण कोप न करणे । छळिता कुणि संतप्त न होणे ।
शांतपणा धरणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ३ ॥

धर्म खरा प्यारा जीवाचा । यत्र करिन पंचप्राणांचा ।
परि तो उध्दरणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ४ ॥

धर्म अहिंसा वीर जिनांचा । रेष्ट कल्पतरु सकळ सुखाचा ।
जीवा उध्दरणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ५ ॥

निष्कलंक-अकलंक मुनींची धर्मोद्धरणी अभिमानाची ।
ज्याला पेटविणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ६ ॥

श्री समंतभद्रा सम होईन । प्रकांड पंडित जगता दिपविन ।
प्रभावना करणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ७ ॥

माघनंदिची तळमळ हृदयी । लागू दे धर्मोन्नतिपायी ।
चैन न मज पडणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ८ ॥

धैर्याचा तट बांधिन भवति । सजवीन तनुचे सत्य चिलखती ।
सहनशील बनणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ९ ॥

करीन प्राशन नीतिसुधेचे । वाढवीन बल तेज जिवांचे ।
संकटा न गणणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ १० ॥

विश्व अहिंसामय बनवाया । शांपिठ जगातले द्याया ।
रात्रंदिन झटणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ ११ ॥

अनुपम सुख असते एकीत । एकी निष्कपटी प्रेमात ।
वैर न उद्भवणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ १२ ॥

प्रेमांकुर फुटता ना प्रगटे निर्दयता । हिंसेचे तेथे
राज्य कसे टिकणार । गगनी ध्वज मी फडकविणार ॥ १३ ॥

अरिहंतस्तुति

जयाची महाघोर कर्मे निमाली
खरी ज्ञानदृष्टी जया प्रापत झाली ।
हिताचाच जोमार्ग दावी जनाला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ १ ॥

परंज्योति जो केवलानभनू
असे भव्य लोकांस जो कामधेनू ।
जया पाहता शांति होते मनाला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ २ ॥

नको संसृतीचा पसारा मनाला
असे पूर्ण वैराग्य वाटून ज्याला ।
तपाने भवातून जो मुक्त झाला ।
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ ३ ॥

सभमंडपी अंतराळी विशाल

जणू दिव्यमूर्ती दिसे सूर्य गोल ।
जयावाचुनी सौख्य नाही मनाला ।
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ ४ ॥

जयाची महा दिव्यवाणी उदेली
खरी आत्मतत्त्वे जगा दाखविली ।
झणी नेतसे अज्ञता जो लयाला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ ५ ॥

जयाचा यशोदुंदुभी नित्य गाजे
महाप्रातिहार्ये सदा तो विराजे ।
महेंद्रास जो सर्वदा वंद्य झाला
सदा भक्तिभवे नमू त्या जिनाला ॥ ६ ॥

जयापासूनी शोक गेला लयाला
म्हणूनी अशोकास जो प्राप्त झाला ।
टिळा जो असे खास भूमंडळाला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ ७ ॥

प्रभा फाकली सर्व लोकात ज्याची
जगी जाहली कीर्ति ज्याच्या गुणांची ।
त्रिलोकास जो सर्वदा वंद्य झाला ।
सदा भक्तिभवे नमू त्या जिनाला ॥ ८ ॥

जयाची महाभरती रत्नमाला ।
गळा घालूनी भूषवी जो तनुला ।
खरा या जगी तोच जन्मास आला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ ९ ॥

महामंत्र उच्चारिता जीवकाने
सुखे सोडिला प्राण त्या कुक्कुराने ।
जयाच्या बले तो पहा देव झाला ।
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ १० ॥

जयाच्या णमोकारमंत्र अनेक
जगी जाहले मुक्त योगिंद्र लोक ।
समुद्रातूनी भुपही पार झाला
सदा भक्तिभवे नमू त्या जिनाला ॥ ११ ॥

जली मंत्र ज्याचा लिहूनी कराने
स्वये त्यावरी ठेविला पाय ज्याने ।
महीपाल तो पोचला दुर्गतीला
सदा भक्तिभवे नमू त्या जिनाला ॥ १२ ॥

जयाचे सदा नाम योगिंद्र घेती
सदा किर्ती गाती जगी भव्यपंक्ती ।
णमोकार ज्याचा जना गोड झाला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ १३ ॥

उठा बंधूनो आठवू या प्रभूला
त्याचा गुणांची स्तुति गावयाला ।
मुखे आदरे गावू या हो जिनाला
सदा भक्तिभावे नमू त्या जिनाला ॥ १४ ॥